वर्ष : ३५

अंक : ०९

# तित्थयर

मूल्य ५०.०० रुपये

दिसम्बर २०११

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित ---

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

Suvigya & Saurabh Boyed

# तित्थयर

*श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका*


वर्ष - ३५ अंक - ९ दिसम्बर २०११

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - **Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007**
**Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,**
**Email : jainbhawan@bsnl.in**

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
**Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007**
**Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00**
**Foreign : $ 500**

**Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006**

संपादन
डॉ. लता बोथरा

॥ जैन भवन ॥

# अनुक्रमणिका


| क्र. सं. लेख | लेखक | पृ. सं. |
|---|---|---|
| १. कर्म | | २९३ |
| २. मुगलकाल में जैन धर्म एवं आचार्य | नीना जैन | ३०२ |
| ३. कुवलय माला | | ३१३ |



Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

**सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान :** मिथ्यात्वमोहनीय के पूर्वोक्त तीन पुंजों में से जब अर्द्ध-विशुद्ध पुंज का उदय हो जाता है, तब जैसे गुड़ से मिश्रित दही का स्वाद कुछ अम्ल (खट्टा) और कुछ मधुर (मीठा) अर्थात् मिश्र होता है। इस प्रकार जीव की दृष्टि भी कुछ सम्यक् (शुद्ध) और कुछ मिथ्या (अशुद्ध)– अर्थात् मिश्र हो जाती है। इसी से वह जीव सम्यगमिथ्यादृष्टि गुणस्थान (मिश्रगुणस्थान के अन्तर्गत माना जाता है)। इस गुणस्थान के समय बुद्धि में दुर्बलता सी आ जाती है। जिससे जीव सर्वज्ञ के कहे हुए तत्वों पर न तो एकान्त रुचि करता है और न एकान्त अरुचि। किन्तु वह सर्वज्ञ-प्रणीत तत्वों के विषय में इस प्रकार मध्यस्थ रहता है, जिस प्रकार कि नालिकेर द्वीप निवासी मनुष्य ओदन (भात) आदि अन्न के विषय में। जिस द्वीप में प्रधानतया नारियल पैदा होते हैं, वहाँ के अधिवासियों ने चावल आदि अन्न न तो देखा होता है और न सुना। इससे वे अदृष्ट और अश्रुत अन्न को देखकर उसके विषय में रुचि या घृणा नहीं करते परन्तु समभाव ही रहते हैं। इसी तरह सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव भी सर्वज्ञ कथित मार्ग पर प्रीति या अप्रीति न करके समभाव ही रहते हैं। अर्धविशुद्ध पुंज का उदय अन्तमुहूर्त्त पर्यन्त रहता है। इसके अनन्तर शुद्ध या अशुद्ध किसी एक पुंज का उदय हो आता है। अतएव तीसरे गुणस्थान की स्थिति मात्र अन्तमुहुर्त्त प्रमाण मानी जाती है।।3।।

**अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान :-** सावद्य व्यापारों को छोड़ देना अर्थात् पापजनक प्रयत्नों से अलग हो जाने को विरति कहते हैं। चारित्र और व्रत, विरति ही का नाम है। जो सम्यग्दृष्टि होकर भी किसी भी प्रकार के व्रत को धारण नहीं कर सकता, वह जीव अविरतसम्यग्दृष्टि, और उसका स्वरूपविशेष अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहलाता ह।

अविरत जीव सात प्रकार के होते हैं जैसे—

1. जो व्रतों को न जानते हैं, न स्वीकारते हैं और न पालते हैं वे सामान्यतः सब लोग।

2. जो व्रतों को जानते नहीं, स्वीकारते नहीं किन्तु पालते हैं। वे तपस्वीविशेष।

3. जो व्रतों को जानते नहीं, परन्तु स्वीकारते हैं और स्वीकार कर पालते नहीं, वे पार्श्वस्थ नामक साधुविशेष।

4. जिनको व्रतों का ज्ञान नहीं है, किन्तु उनका स्वीकार तथा पालन बराबर करते हैं, वे अगीतार्थ मुनि।

5. जिनको व्रतों का ज्ञान तो है, परन्तु जो व्रतों का स्वीकार तथा पालन नहीं कर सकते, वे श्रेणिक, कृष्ण आदि।

6. जो व्रतों को जानते हुए भी स्वीकार नहीं कर सकते किन्तु उनका पालन अवश्य करते हैं, वे अनुत्तर विमानवासी देव।

7. जो व्रतों को जानकर स्वीकार लेते हैं, किन्तु पीछे से उनका पालन नहीं कर सकते, वे संविग्नपाक्षिक।

सम्यग्ज्ञान सम्यग्ग्रहण और सम्यग्पालन से ही व्रत सफल होते हैं। जिनको व्रतों का सम्यग्ज्ञान नहीं है, जो व्रतों को विधिपूर्वक ग्रहण नहीं करते और जो व्रतों का यथार्थ पालन नहीं करते वे सब घुणाक्षरन्याय से व्रतों को पाल भी लें तथापि उससे फलका सम्भव नहीं है। उक्त सात प्रकार के अविरतों में से पहले चार प्रकार के अविरत—जीव तो मिथ्यादृष्टि ही हैं। क्योंकि उनको व्रतों का यथार्थ ज्ञान ही नहीं है और पिछले तीन प्रकार के अविरत जीव सम्यग्दृष्टि हैं क्योंकि वे व्रतों को यथाविधि ग्रहण तथा पालन नहीं कर सकते, तथापि उन्हें यथार्थ जानते हैं। अविरतसम्यग्दृष्टि जीवों में भी कोई औपशमिक-सम्यकत्वी होते हैं, कोई क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी होते हैं और कोई प्रायिक सम्यक्त्वी होते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव व्रत-नियम को यथावत् जानते हुए भी

स्वीकार तथा पालन नहीं कर सकते क्योंकि उनको अप्रत्याख्यानावरण-कषाय का उदय रहता है, और यह उदय चारित्र के ग्रहण तथा पालन का प्रतिबंधक (रोकने वाला) है।।4।।

**देशविरतगुणस्थान**—प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के कारण जो जीव, पाप मूलक क्रियाओं से बिलकुल नहीं किन्तु देश (अंश) से अलग हो सकते हैं वे देशविरत या श्रावक कहलाते हैं, और उनका स्वरूप विशेष देशविरत गुण स्थान। कोई श्रावक एक व्रत को ग्रहण करता है और कोई दो व्रत को। इस प्रकार अधिक से अधिक व्रत को पालन करने वाले श्रावक ऐसे भी होते हैं जो कि पापकार्यों में अनुमति के सिवा और किसी प्रकार से भाग नहीं लेते। अनुमति तीन प्रकार की है जैसे— 1. प्रतिसेवनानुमति, 2. प्रतिश्रवणानुमति और 3. संवासानुमति। अपने या दूसरे के किये हुएं भोजन आदि का उपभोग करना **प्रतिसेवनानुमति** कहाती है। पुत्र-आदि किसी सम्बन्धी के द्वारा किये गये पाप कर्मों को केवल सुनना और सुनकर भी उन कार्यों के करने से पुत्र आदि को नहीं रोकना। उसे **प्रतिश्रवणानुमिति** कहते हैं। पुत्र आदि अपने संबंधियों के पाप कार्य में प्रवृत्त होने पर, उनके ऊपर सिर्फ ममता रखना-अर्थात् न तो पाप-कर्मों को सुनना और सुनकर भी न उसकी निन्दा करना, इसे **संवासानुमति** कहते हैं। जो श्रावक पापजनक आरंभों में किसी भी प्रकार से योग नहीं देता केवल संवासानुमति की सेवा करता है, वह अन्य सब श्रावकों में श्रेष्ठ है ।।5।।

**प्रमत्तसंयतगुणस्थान**— जो जीव पापजनक व्यापारों से विधिपूर्वक सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं, वे ही संयत (मुनि) हैं। संयत भी जब तक प्रमाद का सेवन करते हैं, तब तक प्रमत्तसंयम कहलाते हैं, और उनका स्वरूपविशेष प्रमत्त संयत गुणस्थान कहाता है। जो जीव संयत होते हैं, वे यहां तक सावद्य कर्मों का त्याग करते हैं कि पूर्वोक्त संवासानुमति की भी नहीं सेवा नहीं करते। इतना त्याग कर सकने का कारण यह है कि छठे गुणस्थान से लेकर आगे प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय रहता ही नहीं है।।6।।

**अप्रमत्तसंयतगुणस्थान—** जो मुनि निद्रा, विषय, कषाय विकथा-आदि प्रमादों से दूर रहते हैं वे अप्रमत्त संयत हैं, और उनका स्वरूप-विशेष जो ज्ञान आदि गुणों की शुद्धि तथा अशुद्धि के तारतम्य भाव से होता है, वह अप्रमत्तसंयत गुणस्थान है। प्रमाद के सेवन से ही आत्मा गुणों की शुद्धि से गिरता है। इसीलिये सातवें गुणस्थान से लेकर आगे के सब गुणस्थानों में वर्त्तमान मुनि, अपने स्वरूप में अप्रमत्त ही रहते हैं।।7।।

**निवृत्ति (अपूर्वकरण) गुणस्थान—** जो इस गुणस्थान को प्राप्त कर चुके हैं तथा जो प्राप्त कर रहे हैं और जो आगे प्राप्त करेंगे, उन सब जीवों के अध्यवसाय स्थानों की (परिणाम भेदों की) संख्या, असंख्यात-लोकाकाशों के प्रदेशों के बराबर हैं क्योंकि इस आठवें गुणस्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण है और अन्तर्मुहुर्त्त के असंख्यात समय होते हैं जिनमें से केवल प्रथम समयवर्ती त्रैकालिक (तीनों काल के) जीवों के अध्यवसाय भी असंख्यात-लोकाकाशों के प्रदेशों के तुल्य हैं। इस प्रकार दूसरे, तीसरे आदि प्रत्येकसमयवर्ती त्रैकालिक जीवों के अध्यवसाय भी गणना में असंख्यात-लोकाकाशों के प्रदेशों के बराबर ही हैं। असंख्यात संख्या के असंख्यात प्रकार हैं। इसलिये एक एक समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के अध्यवसायों की संख्या और सब समयों में वर्तमान त्रैकालिक जीवों के अध्यवसायों की संख्या—ये दोनों संख्यायें सामान्यतः एक सी अर्थात् असंख्यात ही हैं। तथापि वे दोनों असंख्यात संख्याएं परस्पर भिन्न हैं। यद्यपि इस आठवें गुणस्थान के प्रत्येक समयवर्ती त्रैकालिक जीव अनन्त ही होते हैं, तथापि उनके अध्यवसाय असंख्यात ही होते हैं। इसका कारण यह है कि समान समयवर्ती अनेक जीवों के अध्यवसाय यद्यपि आपस में अलग-अलग (न्यूनाधिक शुद्धिवाले) होते हैं, तथापि समसमयवर्ती बहुत जीवों के अध्यवसाय तुल्य शुद्धिवाले होने से अलग-अलग नहीं माने जाते। प्रत्येक समय के असंख्यात अध्यवसायों में से जो अध्यवसाय, कम शुद्धिवाले होते हैं, वे जघन्य तथा जो अध्यवसाय, अन्य

सब अध्यवसायों की अपेक्षा अधिक शुद्धिवाले होते हैं, वे उत्कृष्ट कहलाते हैं। इस प्रकार एक वर्ग जघन्य अध्यवसायों का होता है। इन दो वर्गों के बीच में असंख्यात वर्ग हैं, जिनके सब अध्यवसाय मध्यम कहलाते हैं। प्रथम वर्ग के जघन्य अध्यवसायों की शुद्धि की अपेक्षा अन्तिम वर्ग के उत्कृष्ट अध्यवसायों की शुद्धि अनन्त गुण अधिक मानी जाती है और बीच के सब वर्गों में से पूर्व पूर्व वर्ग के अध्यवसायों की अपेक्षा पर वर्ग के अध्यवसाय, विशेष शुद्ध माने जाते हैं। सामान्यतः इस प्रकार माना जाता है कि सम-समयवर्ती अध्यवसाय एक दूसरे से अनन्त भाग अधिक शुद्ध, असंख्यात भाग अधिक शुद्ध, संख्यात भाग अधिक शुद्ध, संख्यात गुण अधिक शुद्ध असंख्यात गुण अधिक शुद्ध और अनन्त गुण अधिक शुद्ध होते हैं। इस तरह की अधिक शुद्धि के पूर्वोक्त अनन्त भाग अधिक आदि छः प्रकारों को शास्त्र में षट्स्थान कहते हैं। प्रथम समय के अध्यवसायों की अपेक्षा दूसरे समय के अध्यवसाय भिन्न ही होते हैं, और प्रथम समय के उत्कृष्ट अध्यवसायों से दूसरे समय के जघन्य अध्यवसाय भी अनन्त गुण विशुद्ध होते हैं। इस प्रकार अन्तिम समय तक पूर्व समय के अध्यवसायों से पर समय के अध्यवसाय भिन्न भिन्न समझने चाहिये तथा पूर्व पूर्व समय के उत्कृष्ट अध्यवसायों की अपेक्षा पर समय के जघन्य अध्यवसाय भी अनन्त गुण विशुद्ध समझने चाहिये।

इस आठवें गुणस्थान के समय जीव पाँच वस्तुओं का विधान करता है। जैसे– 1. स्थितिघात, 2. रसघात, 3. गुणश्रेणी, 4. गुणसंक्रमण और अपूर्व स्थितिबंध।

1. जो कर्म-दलिक आगे उदय में आनेवाले हैं, उन्हें अपवर्तना-करण के द्वारा अपने-अपने उदय के नियत समयों से हटा देना-अर्थात् ज्ञानावरण आदि कर्मों की बड़ी स्थिति को अपवर्तनाकरण से घटा देना, इसे **स्थितिघात** कहते हैं।

2. बँधे हुए ज्ञानावरणादि कर्मों के प्रचुर रस (फल देने की तीव्र शक्ति) को अपवर्तना करण के द्वारा मन्द कर देना यही **रसघात** कहलाता है।

3. जिन कर्म दलिकों का स्थितिघात किया जाता है अर्थात् जो कर्मदलिक अपने अपने उदय के नियत-समयों से हटाये जाते हैं, उनको प्रथम के अन्तर्मुहूर्त्त में स्थापित कर देना **गुणश्रेणी** कहलाती है। स्थापन का क्रम इस प्रकार है:– उदय समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त के जितने समय होते हैं, उनमें से उदयावलिका के समयों को छोड़कर शेष जितने समय रहते हैं इनमें से प्रथम समय में जो दलिक स्थापित किये जाते हैं वे कम होते हैं। दूसरे समय में स्थापित किये जाने वाले दलिक प्रथम समय में स्थापित दलिकों से असंख्यात-गुण-अधिक होते हैं। इस प्रकार अन्तर्मुहुर्त्त के चरमसमयपर्यन्त पर समय में स्थापित किये जाने वाले दलिक, पूर्व पूर्व समय में स्थापित किये गये दलिकों से असंख्यात-गुण ही समझने चाहिये।

4. जिन शुभ-कर्म-प्रकृतियों का बन्ध अभी हो रहा है उनमें पहले बाँधी हुई अशुभ-प्रकृतियों का संक्रमण कर देना अर्थात् पहले बाँधी हुई अशुभ-प्रकृतियों को वर्तमान बन्धवाली शुभ-प्रकृतियों के रूप में परिणत करना **गुण-संक्रमण** कहलाता है।

गुणसंक्रमण का क्रम संक्षेप में इस प्रकार है— प्रथम समय में अशुभ-प्रकृति के जितने दलिकों का शुभ-प्रकृति में संक्रमण होता है, उनकी अपेक्षा दूसरे समय में असंख्यात-गुण-अधिक दलिकों का संक्रमण होता है। इस प्रकार जब तक गुण संक्रमण होता रहता है तब तक पूर्व-पूर्व समय में संक्रमण किये गये दलिकों से उत्तर-उत्तर समय में असंख्यात गुण अधिक दलिकों का ही संक्रमण होता है।

5. पहले की अपेक्षा अत्यन्त अल्पस्थिति के कर्मों को बाँधना **अपूर्वस्थितिबन्ध** कहलाता है।

ये स्थितिघात आदि पाँच पदार्थ, यद्यपि पहले के गुण स्थानों में भी होते हैं, तथापि आठवें गुणस्थान में वे अपूर्व ही होते हैं क्योंकि पहले के गुणस्थानों में अध्यवसायों की जितनी शुद्धि होती है उसकी अपेक्षा आठवें गुणस्थान में अध्यवसायों की शुद्धि अत्यन्त अधिक होती है।

अतएव पहले के गुणस्थानों में बहुत कम स्थिति का और अतिअल्प रस का घात होता है। परन्तु आठवें गुणस्थान में अधिक स्थिति का तथा अधिक रस का घात होता है। इसी तरह पहले के गुणस्थानों में गुणश्रेणी की काल-मर्यादा अधिक होती है तथा जिन दलिकों की गुण श्रेणी (रचना या स्थापना) की जाती है वे दलिक भी अल्प ही होते हैं और आठवें गुणस्थान में गुणश्रेणी-योग्य-दलिक तो बहुत अधिक होते हैं, परन्तु गुणश्रेणी का काल-मान बहुत कम होता है तथा पहले गुणस्थानों की अपेक्षा आठवें गुणस्थान में गुणसंक्रमण भी बहुत कर्मों का होता है, अतएव वह अपूर्व होता है और आठवें गुणस्थान में इतनी अल्प स्थिति के कर्म बाँधे जाते हैं कि जितनी अल्प-स्थिति के कर्म पहले के गुणस्थानों में कदापि नहीं बँधते। इस प्रकार उक्त स्थितिघात आदि पदार्थों का अपूर्व विधान होने से इस आठवें गुणस्थान का दूसरा नाम **अपूर्वकरण** गुणस्थान यह भी शास्त्र में प्रसिद्ध है।

जैसे राज्य को पाने की योग्यतामात्र से भी राजकुमार राजा कहाता है, वैसे ही आठवें गुणस्थान में वर्तमान जीव, चारित्र-मोहनीय कर्म के उपशमन या क्षपण के योग्य होने से उपशमक या क्षपक कहलाते हैं क्योंकि चारित्र-मोहनीय कर्म के उपशमन या क्षपक का प्रारम्भ नवें गुणस्थानक में ही होता है, आठवें गुणस्थान में तो उसके उपशमन या क्षपण के प्रारम्भ की योग्यतामात्र होती है।।8।।

**अनिवृत्तिवादर संपराय गुणस्थान**— इस गुणस्थान की स्थिति भी अन्तर्मुहुर्त्त प्रमाण ही है। एक अन्तर्मुहुर्त्त के जितने समय होते हैं उतने ही अध्यवसाय स्थान, इस नवें गुणस्थान में माने जाते हैं क्योंकि नवें गुणस्थानक में जो जीव सम-समयवर्ती होते हैं। उन सब के अध्यवसाय एक से अर्थात् तुल्य-शुद्धिवाले होते हैं। जैसे प्रथम समयवर्ती त्रैकालिक, अनन्तजीवों के भी अध्यवसाय समान ही होते हैं। इस प्रकार दूसरे समय से लेकर नवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक तुल्य समय में वर्त्तमान त्रैकालिक जीवों के अध्यवसाय भी तुल्य ही होते हैं

और तुल्य अध्यवसायों को एक ही अध्यवसाय स्थान मान लिया जाता है। इस बात को समझने की सरल रीति यह भी है कि नवें गुणस्थान के अध्यवसायों के उतने ही वर्ग हो सकते हैं जितने कि उस गुणस्थान के समय हैं। एक एक वर्ग में चाहे त्रैकालिक अनन्त जीवों के अध्यवसायों की अनन्त व्यक्तियाँ शामिल हों, परन्तु प्रतिवर्ग अध्यवसाय-स्थान एक ही माना जाता है क्योंकि एक वर्ग के सभी अध्यवसाय शुद्धि में बराबर ही होते हैं परन्तु प्रथम समय के अध्यवसाय स्थान से अर्थात् प्रथम वर्गीय अध्यवसायों से दूसरे समय के अध्यवसाय-स्थान-अर्थात् दूसरे वर्ग के अध्यवसाय– अनन्त-गुण-विशुद्ध होते हैं। इसी प्रकार नवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक पूर्व पूर्व समय के अध्यवसाय-स्थान से उत्तर उत्तर समय के अध्यवसाय स्थान को अनन्त-गुण-विशुद्ध समझना चाहिये। आठवें गुण स्थानक से नवें गुणस्थानक में यही विशेषता है कि आठवें गुणस्थानक में तो समान-समयवर्ती त्रैकालिक अनन्त जीवों के अध्यवसाय शुद्धि के तारतम्य-भाव से असंख्यात वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं परन्तु नवें गुणस्थान में सम-समयवर्ती त्रैकालिक अनन्त-जीवों के अध्यवसायों का समान शुद्धि के कारण एक ही वर्ग हो सकता है। पूर्व-पूर्व गुणस्थान की अपेक्षा उत्तर-उत्तर गुणस्थान में कषाय के अंश बहुत कम होते जाते हैं और कषाय की (संक्लेष की) जितनी ही कमी हुई, उतनी ही विशुद्धि जीव के परिणामों की बढ़ जाती है। आठवें गुणस्थान से नवें गुणस्थान में विशुद्ध इतनी अधिक हो जाती है कि उसके अध्यवसायों की भिन्नताएं आठवें गुणस्थान के अध्यवसायों की भिन्नताओं से बहुत कम हो जाती हैं।

दसवें गुणस्थान की अपेक्षा नवें गुणस्थान में बादर (स्थूल) सम्पराय (कषाय) उदय में आता है। तथा नवें गुणस्थान के सम-समय-वर्ती जीवों के परिणामों में निवृत्ति (भिन्नता) नहीं होती। इसीलिये इस गुणस्थान का **अनिवृत्तिबादरसम्पराय** ऐसा सार्थक नाम शास्त्र में प्रसिद्ध है।

नवें गुणस्थान को प्राप्त करने वाले जीव, दो प्रकार के होते हैं एक उपशमक और दूसरे क्षपक। जो चारित्र मोहनीय कर्म का उपशमन करते हैं वे उपशमक और जो कर्म का क्षपक (क्षय) करते हैं वें क्षपक कहलाते हैं।।9।।

**सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान—** इस गुणस्थान में सम्पराय के अर्थात् लोभ कषाय के सूक्ष्म-खण्डों का ही उदय रहता है। इसलिये इसका **सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान** ऐसा सार्थक नाम प्रसिद्ध है। इस गुणस्थान के जीव भी उपशमक और क्षपक होते हैं। जो उपशमक होते हैं वे लोभ-कषायमात्र का उपशमन करते हैं और जो क्षपक होते हैं वे लोभ-कषाय मात्र का क्षपक करते हैं क्योंकि दसवें गुणस्थान में लोभ के सिवा दूसरी चारित्रमोहनीय कर्म की ऐसी प्रकृति ही नहीं है जिसका कि उपशमन या क्षपक हुआ न हो।।10।।

**उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थगुणस्थान—** जिनके कषाय उपशान्त हुए हैं, जिनको राग का भी (माया तथा लोभ का भी) सर्वथा उदय नहीं है और जिनको छद्म (आवरण भूत घातिकर्म) लगे हुए हैं, वे जीव उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थ, तथा उनका स्वरूप-विशेष **उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान** कहलाता है।

विशेषण दो प्रकार का होता है। 1. स्वरूप विशेषण, और 2. व्यावर्तक विशेषण। **स्वरूप विशेषण** उस विशेषण को कहते हैं जिस विशेषण के न रहने पर भी शेष भाग से इष्ट अर्थ का बोध हो ही जाता है– अर्थात् जो विशेषण अपने विशेष्य के स्वरूप मात्र को जनाता है। **व्यावर्तक विशेषण** उस विशेषण को कहते हैं जिस विशेषण के रहने से ही इष्ट-अर्थ का बोध हो सकता है— अर्थात् जिस विशेषण के अभाव में इष्ट के सिवा दूसरे अर्थ का भी बोध होने लगता है।)

(क्रमशः)

# अकबर का जैन आचार्यों एवं मुनियों से सम्पर्क तथा उनका प्रभाव

**नीना जैन**

**3. उपाध्याय भानुचन्द्र जी—**

अकबर ने भानुचन्द्रजी को अपने राजकुमारों सलीम और दीनदयाल को शिक्षा के लिए नियुक्त किया था।

हीरविजय सूरिरास में कवि ऋषभदास लिखते हैं—

जांगीरसा ने दानिआर, भणै जैन शास्त्र तिहां सार
कहे अकबर गदाजी, मीर, भाणचन्द ते अवल फकीर[1]

स्वयं अकबर भी भानुचन्द्रजी से पढ़ा करता था—इसका उल्लेख सिद्धचन्द्र उपाध्याय विरचित भानुचन्द्र गणिचरित में मिलता है।

एक बार बीरबल ने अकबर से कहा **मनुष्य के काम आने वाले फल-फूल घास, पात आदि सब पदार्थ सूर्य ही के प्रताप से उत्पन्न होते हैं, अन्धकार को दूरकर जगत में प्रकाश फैलाने वाला भी सूर्य है इसलिए आपको सूर्य की आराधना करनी चाहिए[2] बीरबल के अनुरोध से बादशाह सूर्य की पूजा करने लगा। बदायूनी ने भी लिखा है दूसरा हुक्म ये दिया गया था कि सबेरे, शाम दोपहर और मध्य रात्रि में इस प्रकार दिन में चार बार सूर्य की पूजा होनी चाहिए।** बादशाह ने भी सूर्य के एक हजार एक नाम जाने थे और सूर्याभिमुख होकर भक्ति पूर्वक उन नामों को बोलता था[3] इसी तरह कई लेखकों ने लिखा है कि

---

1. हीरविजयसूरिरास—पण्डित ऋषभदास, पृष्ठ 180
2. सूरीश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा, पृष्ठ 148
3. अलबदायूनी—डब्ल्यू. एच. लाँ द्वारा अनूदित, भाग 2, पृष्ठ 332

बादशाह को यह नाम किसने सिखाये थे? भानुचन्द्र गणिचरित में इस बात का वर्णन इस तरह से हैं— **एक बार अकबर ने दरबार में रहने वाले ब्राह्मणों से सूर्य के सहस्त्र नाम मांगे, परन्तु कहीं प्राप्त नहीं हो रहे थे। भाग्यवशात् किसी बुद्धिमान ने उन्हें वे नाम दे दिये और उन्होंने वे नाम अकबर के सम्मुख प्रस्तुत किये। अकबर उन्हें देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ उसने ब्राह्मणों से ऐसे व्यक्ति की मांग की जो इन नामों को उसे समझा सके। ब्राह्मणों ने उत्तर दिया कि इन नामों को ऐसा व्यक्ति ही समझा सकता है जिसने वासनाओं का दमन कर लिया हो, भूशायी हो तथा ब्रह्मचारी हो तब अकबर की दृष्टि भानुचन्द्र की ओर गई, उसने कहा कि ऐसे व्यक्ति तो आप ही हैं, मुझे इन नामों को पढ़ाया कीजिये[1] इस प्रकार भानुचन्द्र ज़ी उन्हें प्रतिदिन सूर्य सहस्त्रनाम पढ़ाने जाया करते थे। कवि-ऋषभदास अपने हीरविजयसूरि रास में लिखते हैं बादशाह अपने काश्मीर प्रवास में भी भानुचन्द्रजी से सूर्यसहस्त्र नाम सुनने के लिए ही साथ ले गये थे।[1]**

दूसरा सबल प्रमाण यह भी है कि सूर्यसहस्त्रनामा की एकहस्तलिखित प्रति पूज्यपाद गुरुवर्य शास्त्र विशारद जैनाचार्य श्री विजयधर्म सूरिश्वरजी महाराज के पुस्तक भण्डार शिवपुरी में है। इससे स्पष्ट होता है कि बादशाह सूर्य के सहस्त्र नाम जरूर सुनता था और सुनाते थे भानुचन्द्रजी।

एक दिन अवसर पाकर भानुचन्द्रजी ने बादशाह से कहा कि सौराष्ट्र में जो युद्धबन्दी हैं उन्हें मुक्त कर दिया जाये। बादशाह पहले तो हिचकिचाया लेकिन बाद में कैदियों को मुक्त करने का आदेश दे दिया और एक फरमान लिखकर भानुचन्द्र जी को दे दिया जिसे उन्होंने गुजरात भेज दिया।[2]

---

1. भानुचन्द्रगणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 30
2. हीरविजयसूरिरास—पण्डित ऋषभदास, पेज 182

उन दिनों लाहौर किले में जैन साधुओं के निवास के लिए कोई उपाश्रय नहीं था। भानुचन्द्र उपाध्याय की भी यह इच्छा थी कि किसी प्रकार कोई उपाश्रय यहां बनाना चाहिए पर उसके लिए स्थान प्राप्त करना अति दुष्कर कार्य था क्योंकि मुसलमान तथा अजैन लोग जैन धर्म से द्वेष रखते थे। तो भी भानुचन्द्रजी ने एक युक्ति सोची और उसके अनुसार वे एक दिन अकबर को पढ़ाने देर से गये। अकबर ने इसका कारण पूछा तो भानुचन्द्रजी ने इसका उत्तर दिया कि मेरे पास कोई उपयुक्त स्थान नहीं है, जो है वह अत्यन्त संकीर्ण है और दूर है इसलिए राजदरबार में आने में कठिनाई होती हैं। अकबर ने उनके निवास के लिए अपने प्रासाद में स्थान देना चाहा पर वह भानुचन्द्रजी के अभिप्राय के अनुकूल न था इसलिए अकबर ने उन्हें भूमि का ऐंक टुकड़ा दे दिया। वहाँ स्थानीय श्रावकों ने एक उपाश्रय बनवाया तथा वहां शान्तिनाथ स्वामी का एक चैत्य भी बनवा दिया।[1] इस बात का उल्लेख हीरविजय सूरिरास में मिलता है।[2]

बादशाह के पुत्र शहजादा सलीम के एक पुत्री मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न हुई थी जो अत्यन्त अनिष्टकारी थी। इस अनिष्ट का परिहार करने लिए सम्राट की इच्छानुसार सम्वत् 1648 (सन् 1591) चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को भानुचन्द्र जी के कहने से अष्ठोत्तरी शान्ति स्नान करवाया जिसमें लगभग एक लक्ष्य रुपया व्यय हुआ। इस घटना का विवरण भानुचन्द्र गणिचरित और हीरविजय सूरिरास में मिलता है।[3]

बादशाह के दरबार में रहकर उपाध्याय श्री भानुचन्द्रजी ने शत्रुन्जय के यात्रियों पर से **जजिया** कर हटवा दिया।[4]

---

1. भानुचन्द्र जी गणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पेज 30
2. हीरविजयसूरिरास पण्डित ऋषभदास श्लोक 36-37 पेज 182
3. भानुचन्द्र गणिचरित भूमिका लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल पेज 30-32 हीरविजय सूरिरास पेज 183, श्लोक 38
4. भानुचन्द्र गणिचरित पृष्ठ 25 तृतीय प्रकाश, श्लोक 36-42

हीरसौभाग्यकाव्य में इसका वर्णन मिलता है।[1]

ग्वालियर (गोपाचल) के किले में जो जैन मूर्तियां आक्रांताओं और दुष्टजनों द्वारा विकृत कर दी गई थी उनका जीर्णोद्धार आपने अकबर की कहकर उसी के राजकोष से करवाया।[2]

ग्वालियर के किले में जैन मूर्तियों के होने का समर्थन हीरसौभाग्यकाव्य से भी होता है।[3] आज भी किले के अन्दर और बाहर हजारों मूर्तियां खण्डितावस्था में पड़ी हैं। किले में वर्ष में एक बार दिगम्बर जैनों का मेला भी लगता है।

यद्यपि भानुचन्द्रजी स्वयं जैन श्वेताम्बर थे, परन्तु उन्होंने दिगम्बर जैन मूर्तियों के प्रति कोई पक्षपात नहीं प्रदर्शित किया। इससे उनकी उदार प्रवृत्ति का परिचय प्राप्त होता है। श्वेताम्बरों का दिगम्बरों के प्रति इस प्रकार के व्यवहार का यह हमें प्रथम ही उदाहरण प्राप्त हुआ है। भानुचन्द्र श्वेताम्बर जैन एवं तपागच्छ के थे तथा जहांगीर ने उन्हें **तपागच्छ के प्रमुख लिखा है।**[4]

भानुचन्द्रगणिचरित से यह भी ज्ञात होता है कि शेख अबुलफजल ने भानुचन्द्र से **षड़दर्शन समुच्चय** पढ़ने की इच्छा प्रगट की थी जिसे स्वीकार करके भानुचन्द्र ने शेख को नियमित रूप से शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। शेख अबुलफजल पढ़ते समय भानुचन्द्र जी के वचनों को लिपिबद्ध करते जाते थे।[5] आइने अकबरी में जहाँ अबुलफजल ने भारत में प्रचलित धर्मों का वर्णन किया है वहां जैन श्वेताम्बर धर्म के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि श्वेताम्बर जैन धर्म का ज्ञान उसे श्वेताम्बर जैन साधु

---

1. हीरसौभाग्यकाव्य श्लोक 284 सर्ग 14
2. भानुचन्द्र गणिचरित चतुर्थ प्रकाश, श्लोक 123-29
3. हीरसौभाग्यकाव्य सर्ग 14, श्लोक 251-252
4. द तुजुक-ए-जहांगीरी और मैमोरीज ऑफ जहांगीर पृष्ठ 437-454
5. भानुचन्द्र गणिचरित द्वितीय प्रकाश, श्लोक 58-60

से ही प्राप्त है।[1] उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार ये जैन साधु भानुचन्द्र उपाध्याय ही सम्भव है। यह भी एक आश्चर्य का विषय है कि अबुलफजल ने जैन धर्म पर एक आध स्थल को छोड़कर इतने सुन्दर ढंग से लिखा है कि बिरले ही लेखक इस प्रकार लिखने में सफल हो सकते हैं।

एक बार बादशाह के सिर में असहनीय दर्द उठा। वैद्यों का इलाज व अन्य सभी प्रकार के प्रयत्न करने के बावजूद भी ठीक न हुआ। उसने भानुचन्द्र जी को बुलाकर उनका हाथ अपने सिर पर रखा। भानुचन्द्र जी के **पार्श्व मन्त्र** सुनाने से बादशाह को बड़ा आराम मिला। बादशाह को तो पहले ही भानुचन्द्र जी पर विश्वास था लेकिन इस घटना से उनका विश्वास अटल हो गया। बादशाह के स्वस्थ होने की खुशी में उमरावों ने 500 गायें खुदा को भेंट चढ़ाने के लिऐं एकत्रिक की। जब बादशाह को इस बात का पता चला तो उसने उसी समय गायों को मुक्त करने का आदेश दिया जिससे भानुचन्द्रजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। स्वस्थ होने की खुशी में बादशाह ने भानुचन्द्र से कुछ भी मांगने को कहा तो भानुचन्द्र जी ने निवेर्दन किया कि **जजिया** कर हटा दिया जाये और गाय, बैल, भैंस सब जीवों की रक्षा की जाये। बादशाह ने उसी समय ऐसा फरमान लिख दिया। इस घटना का विवरण हीरविजयसूरिरास और भानुचन्द्रगणिचरित में मिलता है।[2] भानुचन्द्र जी को **उपाध्याय** पद अकबर के आग्रह से दिया गया था। अकबर ने एक बार भानुचन्द्रजी के वार्तालाप से प्रसन्न होकर यह पूछा कि जैन समाज में सबसे बड़ा पद कौन सा है? भानुचन्द्र जी ने उत्तर दिया कि सबसे बड़ा पद आचार्य है और उससे छोटा उपाध्याय है। अकबर ने उन्हें आचार्य पद से विभूषित करना चाहा पर भानुचन्द्र जी ने कहा कि इस पद के मैं अभी योग्य नहीं हूँ। वर्तमान समय में इस पद के योग्य आचार्य श्री हीरविजयसूरि है। अबुलफजल के परामर्श पर

---

1. आइने अकबरी एच. एस. जैरेट द्वारा अनुदित भाग 3 पृष्ठ 210
2. हीरविजयसूरीरास पेज 180-81, भानुचन्द्रगणिचरित पेज 59-60

अकबर ने उन्हें **उपाध्याय पद देना चाहा तो जैन समाज के किसी प्रमुख व्यक्ति ने उन्हें सुझाया कि इसके लिए हमारे समाज के आचार्य की अनुमति आवश्यक है आप वह हीरविजयसूरिजी से मंगा लें। अबुलफजल ने एक पत्र द्वारा हीरविजयसूरिजी से अनुमति मंगवाई। हीरविजयसूरिजी ने अनुमति के साथ वासक्षेप भी भेजा इस प्रकार भानुचन्द्र उपाध्याय पद से विभूषित किये गये।**[1]

इस घटना का समर्थन हीरविजयसूरिरास और हीरसौभाग्य काव्य में भी होता है।[2]

### 4. उपाध्याय सिद्धिचन्द्र जी—

जब आचार्य हीरविजयसूरिजी ने भानुचन्द्रजी को अकबर के दरबार में भेजा। तब उनके साथ सुयोग्य शिष्य सिद्धिचन्द्र जी भी थे। बादशाह उनका भी बहुत आदर करता था। ये संस्कृत और फारसी के बड़े विद्वान थे अपनी योग्यता के बल पर अकबर के दरबार में अच्छी ख्याति पाई। उन्होंने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से बादशाह से कई कार्य करवाये जिनमें से कुछ का उल्लेख हम यहाँ करेंगे।

आगरा में कुछ अजैनों ने जैनियों के विरुद्ध सम्राट के दिमाग में भरा। सम्राट ने एक आदेश द्वारा, वहां जो जैनियों का चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर बन रहा था, रुकवा दिया, मन्दिर लगभग आधा बन चुका था। तब सिद्धिचन्द्र जी ने अपने व्यक्तिगत प्रभाव से सम्राट द्वारा उस आदेश को निरस्त करवाया जिससे कुछ ही समय में मन्दिर का कार्य पूर्ण हुआ।[3]

एक बार बुरहानपुर में बत्तीस चोर मारे जाने थे। उस समय दया भाव से प्रेरित होकर सिद्धिचन्द्र जी बादशाह की आज्ञा लेकर स्वयं वहां गये और उन चोरों को छुड़ाया था जयदास जपो नाम का एक लाड

1. भानुचन्द्रगणिचरित द्वितीय श्लोक 169-186
2. हीरविजयसूरिरास पेज 183-84, हीरसौभाग्य काव्य सर्ग 14 श्लोक 285-86
3. भानुचन्द्र गणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 43

बनिया! हाथी तले कुचल कर मारा जाना था उसको भी उन्होंने छुड़ाया[1] हीरविजयसूरिरास में भी उसका वर्णन मिलता है[2] सौराष्ट्र में अजीव को-का के पुत्र खुर्रम शत्रुन्जय पहाड़ के नीचे जैन मन्दिर को नष्ट कर दिया पहाड़ी पर जो मन्दिर बना था उसे कुछ दुष्ट लोगों ने घेरकर उसे जलाने के लिए चारों ओर लकड़ियां लगा दी। विजयसेनसूरि ने सिद्धिचन्द्रजी को इस बात की सूचना दी। सिद्धिचन्द्र जी तुरन्त सम्राट के पास पहुँचे और सारी स्थिति से अवगत कराया। सम्राट ने इसे रोकने के लिए शाही फरमान दिया, जिसे तुरन्त सौराष्ट्र भेज दिया गया। इस तरह से सिद्धिचन्द्रजी ने अपनी योग्यता से तीर्थ की रक्षा की[3]

जब सलीम गुजरात का वायसराय बना तो अकबर ने उसके कार्यों में दखल देना बन्द कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वहां अनेक कठिनाइयां पैदा हो गई (पशु वध और जजिया कर आदि लिये जाने लगे) जब सिद्धिचन्द्रजी के पास इस तरह का समाचार आया तो वे सम्राट के पास पहुंचे और सम्राट का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि गुजरात वायसराय किस निर्दयता से लोगों को दबा रहा है जिसे सुनकर सम्राट दुखी हुआ और इनके निषेध के लिए एक लिखित फरमान दिया। इस तरह से सिद्धिचन्द्रजी के प्रयत्नों द्वारा गुजरात के लोगों को अत्याचारों से मुक्ति मिली।[4]

बादशाह ने सिद्धिचन्द्रजी के साधु धर्म की परीक्षा के लिये पहले तो धन सम्पत्ति का लोभ दिखाया जब वे लुब्ध न हुए तब उन्हें कत्ल करा देने की धमकी दी परन्तु सिद्धिचन्द्रजी अपने धर्म में अटल रहे उन्होंने लोभ और धमकी का उत्तर जिन शब्दों में दिया उसे कवि ऋषभदेव ने लिखा है **इस तुच्छ लक्ष्मी का और सुख सामग्रियों का मुझे**

1. सूरीश्वर और सम्राट—कृष्णलाल वर्मा पेज 157
2. हीरविजयसूरिरास—पण्डित ऋषभदास पेज 185
3. भानुचन्द्र गणिचरित—भूमिका लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पेज 46
4. वहीं पेज 46-47

**क्या लोभ दिखाते हो, अगर आप सारा राज्य देने को तैयार होंगे तो भी मैं लेने को तैयार न होऊंगा जिसको तुच्छ हेय समझकर छोड़ दिया उसे पुनः ग्रहण करना थूके को निगलना है इन्सान ऐसा नहीं कर सकता और मौत का डर तो मुझे अपने चरित्र से नहीं डिगा सकता। आज या दस दिन बाद नष्ट होने वाला यह शरीर मुझे धर्म से बढ़कर प्यारा नहीं है[1] सिद्धिचन्द्रजी के उत्तर से बादशाह बहुत प्रभावित हुआ।**

इस तरह सिद्धिचन्द्र जी ने बादशाह को बहुत प्रभावित किया क्योंकि वे विद्वान होने के साथ-साथ शतावधानी भी थे इसलिए बादशाह उनसे बहुत प्रसन्न रहता था, इन्होंने बाणभट्ट की कादम्बरी (उत्तरार्ध) की टीक है उनकी योग्यता से प्रसन्न होकर ही बादशाह ने उन्हें खुशफहम (तीव्र बुद्धि का व्यक्ति) की पद्वी से विभूषित किया[2] बादशाह अकबर के समय में ये **गणि** थे इन्हें बादशाह जहांगीर के समय में **उपाध्याय** पद दिया गया।

### 5. आचार्य विजयसेन सूरि—

हम पहले कह आये हैं कि अकबर ने इबादतखाने में अपनी सभी के सदस्यों को पांच भागों में विभक्ति किया था। पांचवें वर्ग के 139वें स्थान पर विजयसेन नाम अंकित है।[3] ये विजयसेन को ही विजयसेनसूरि के नाम से जाना जाता है।

जिस समय हीरविजयसूरिजी ने फतेहपुर सीकरी से विहार किया था तो बादशाह के अनुरोध पर सूरिजी ने यह वचन दिया था कि वे विजयसेन (अपने प्रधान शिष्य) को अवश्य भेजेगें। हीरविजयसूरिजी के विहार के बाद शान्तिचन्द्रजी, भानुचन्द्रजी और सिद्धिचन्द्रजी बादशाह के पास रहे। भानुचन्द्रजी और सिद्धिचन्द्रजी प्रायः विजयसेनसूरि

---

1. हीरविजयसूरिरास–पण्डित ऋषभदास पृष्ठ 85-86
2. सूरीश्वर और सम्राट पेज 157, भानुचन्द्रगणिचरित पेज 9
3. आइने अकबरी एच. ब्लोंचमैन द्वारा अनुदित पृष्ठ 617

की तारीफ किया करते थे इसके अलावा बादशाह को भी हीरविजयसूरिजी का दिया हुआ वचन याद था। अतः संवत् 1649 (सन् 1595) में जब हीरविजयसूरि राधनपुर में थे तो बादशाह ने विजयसेनसूरि को बुलाने के लिए एक पत्र भेजा जिसका वर्णन कवि ऋषभदेव ने इस प्रकार किया है—

**यद्यपि आप विरागी हैं, परन्तु मैं रागी हूँ। आपने संसार के सारे पदार्थों का मोह मोड़ छोड़ दिया है इसलिए सम्भव है कि आपने मेरा मोह भी छोड़ दिया हो। परन्तु महाराज मैं आपको नहीं भूला। समय-समय पर आप मुझे कोई सेवा कार्य अवश्य बताते रहे, इससे मैं समझूंगा कि मुझपर आप मुझे कोई सेवा कार्य अवश्य बताते रहे, इससे मैं समझूगा कि मुझपर गुरुजी की कृपा अब भी वैसी ही है और यह समझ मुझे बहुत आनन्ददायक होगी। आपको स्मरण होगा कि रवाना होते समय आपने मुझे विजयसेन सूरि को यहाँ भेजने का वचन दिया था, आशा है कि आप उन्हें यहाँ भेजकर मुझे विशेष उपकृत करेंगे।**[1]

यद्यपि अपनी वृद्धावस्था के कारण सूरिजी की इच्छा विजयसेनसूरि को अपने पास से अलग करने की नहीं थी लेकिन बादशाह को दिये वचन के अनुसार उन्होंने अपने शिष्य को आज्ञा दी जिसे शिरोधार्य कर विजयसेनसूरि सम्वत् 1650 मगसर सुदी तीज (सन 1592) के दिन विहार कर सम्वत् 1650 ज्येष्ठ सुदी बारस (सन् 1593) के दिन लाहौर पहुंचे।

विजयसेनसूरि ने अकबर के दरबार में जाते ही अपनी प्रखर प्रतिभा एवं पांडित्य से अनेक पण्डितों की शास्त्रार्थ में हराया जिससे ब्राह्मण पण्डितों को इर्ष्या हुई तो उन्होंने अकबर के कान भरना शुरू कर दिये। पण्डितों ने आरोप लगाया कि कौन लोग ईस्वर को नहीं मानते फिर भी आप इन्हें (विजयसेनसूरि को) इतना सम्मान देते हो।

---

1. हीरविजयसूरिरास—पण्डित ऋषभदास 989, टाल 22, 23, 24

जैन अनिश्वरवादी है और ऐसे अनिश्वरवादी लोगों के सिद्धान्तों पर चलना आप जैसे सम्राटों को शोभा नहीं देता। इस प्रकार की बातों से कुपित होकर लेकिन क्रोध को छिपाकर बादशाह ने सूरिजी से कहा कि आप इन पण्डितों के तर्को का खण्डन कर ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित करें जिससे इनका गर्व चूर्ण हो सके। इसपर सूरिजी ने कहा— हे शहंशाह दूषणों से रहित देव को हम मानते है अठारह दूषण ये हैं–

दानान्तराय, लाभान्तराय, वीर्यान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगांतराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, मिद्रा, अविरति, राग और द्वेष इन अठारह दूषणों का ईश्वर में अभाव है।[1]

सूरिजी ने कहा जो तीनों काल का प्रकाशक है, उसके प्रकाश के सामने सूर्य भी फीका पड़ जाता है। जो जन्म मरण आदि से रहित है, ऐसे परमेश्वर को हम लोग मन, वचन, कार्यों से मानते हैं अब आप स्वयं ही बताइये कि हम अनिश्वरवादी कैसे हैं? इसकी पुष्टि में सूरिजी ने अपना प्रमाण प्रस्तुत किया—

**परमात्मा को शैव लोग शिव कह करके उपासना करते हैं। वेदान्ती लोग ब्रह्मा शब्द से। जैन शासन में रत जैन लोग कहर्न शब्द से तथा नैयायिक लोग वर्ता शब्द से व्यवहार करते हैं वही त्रैलोक्य का स्वामी परमात्मा तुम लोगों को वांछित फल देने वाला है।**[2]

---

1. अन्तराया दान-लाभ-वीर्य-भोगोपभोगगाः।
हासो रत्यरति भीतिर्जुगुप्सा–शोक एव च।।
कामो मिथ्यात्वज्ञानं निद्राच विरतिस्तया।
रागो द्वेषश्च नो दोपास्तेषामष्टादशप्यमी।
विजयप्रशस्तिसार—मुनिराज विद्याविजयजी पेज 54

2. ये शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मैति वेदान्तिनो।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रणाम पटवः कर्मेतिं मिमांसकाः।।
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्तेति मिमांसकाः।।
सोत्र्यं वो विद्धातु वांछित फल त्रैलोक्य नाथो हरिः।।
विजयप्रशास्तिकाव्य—पण्डित हेमविजयगणि सर्ग 12, श्लोक 178

सचमुच कहा जाये तो इस प्रमाण से स्पष्ट प्रतीत होता है जैन ईश्वर को मानते ही हैं। जब ब्राह्मण पण्डित इस तर्क से पराजित हुए तो उन्होंने दूसरा आरोप लगाया कि जैन सूर्य एवं गंगा को नहीं मानते। इस आरोपों का खण्डन सूरिजी ने अपने तर्को से किया और बादशाह ने कहा कि जैन सूर्य के दर्शन किये बिना पानी भी नहीं पीते और सूर्य अस्त होने के बाद अन्न जल तब तक ग्रहण नहीं करते जब तक कि अगले दिन पुनः सूर्य के दर्शन न कर लें। सूर्य को मानने के पक्ष में सूरिजी ने यह कहा कि जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो उसके सम्बन्धी या राजा मर जाये तो प्रजा तब तक भोजन नहीं करती जब तक उसका अग्नि संस्कार न कर दिया जाये।[1]

इसलिए जो सूर्य अस्त होने पर (रात्रि में) भोजन करते हैं और सूर्य को मानने का द्वारा करते हैं उनकी यह बात कहां तक उचित है? उसे कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति सहज ही समझ सकता है।

गंगा को मानने के सम्बन्ध में सूरिजी ने कहा जो गंगा को पवित्र मानने का दावा करते हैं वे उसके अन्दर नहाते हैं कुल्ला करते हैं क्या इस तरह वे गंगा मां का बहुमान करते हैं। इसी तरह वे उसे मानते हैं? जैन तो गंगाजल का उपयोग बिम्ब प्रतिष्ठादि शुभ कार्यों में करते हैं[2] इस पर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति विचार कर सकता है कि गंगाजी का सच्चा बहुमान जैनी करते हैं या वे शास्त्रार्थ करने वाले पण्डित?

क्रमशः

---

1. अधाम धामधामेधं स्वचेतसि
   यस्यास्तव्यसने प्राप्ते त्यजायो भोजनोदक।।
   श्री तपागच्छ पट्टावली—कल्याणविजयजी पृष्ठ 243
2. श्री सेन प्रश्न सार संग्रह—पण्डित शुभविजयगणि विरचित पृष्ठ 20

# कुवलय माला

श्री केवल मुनि

**चंडसोम का पश्चाताप :**

गंगा-स्नान सर्व पापों को धोने वाला है—यह लोक में प्रसिद्ध ही हैं।

सातवें ने ब्राह्मण जाति की विशेषता बता दी—

आप सब लोग व्यर्थ ही प्रायश्चित की बात कर रहे हैं। ब्राह्मण जाति तो सर्वदा शुद्ध ही है। कोई पाप उसका स्पर्श भी नहीं कर सकता। चंडसोम ब्राह्मण है। इस कारण पाप इसे लगा ही नहीं।

सभी अपने-अपने ज्ञान, बुद्धि और परम्परा के अनुसार प्रायश्चित का विधान करने लगे किन्तु चंडसोम ने किसी विधान को नहीं स्वीकारा। उसकी सहज बुद्धि में यह भी न आ सका कि ब्राह्मण जाति को पाप स्पर्श भी क्यों नहीं कर सकता। वह अपना संतप्त हृदय लिए अपने सन्निवेश से चल दिया।

चंडसोम के जीवन की इस घटना को सुनाकर आचार्य धर्म नन्दन कुछ क्षणों के लिए मौन हो गए। तभी चंडसोम स्वयं उठ खड़ा हुआ और उनका चरण पकड़कर बोला—

मुनिवर! आप सब कुछ जानते हैं। मैं अपने संतप्त हृदय लिए भटकता हुआ, शांति की खोज में यहाँ तक आया हूँ। मैं बड़ा पापी और क्रूर हूँ। मेरा उद्धार कीजिए, गुरुदेव।

राजा सहित सभी उपस्थित जन चकित रह गये आचार्यश्री के दिव्य ज्ञान पर। सभी के हृदय में श्रद्धा उमड़ पड़ी उनके प्रति। राजा पुरंदरदत्त ने पूछा—

गुरुदेव! आप इसे किस प्रकार का प्रायश्चित देंगे।

मुनिश्री ने बताया—

राजन्! प्रायश्चित का अभिप्राय है आत्म-शुद्धि और आत्मशुद्धि हो सकती है आत्मनिन्दा, गर्हा तथा आलोचना से। इसे भी यहीं करना चाहिए।

चंडसोम ने अपना सिर आचार्यश्री के चरणों में टिका दिया। आंसुओं से उनके चरण कमल धोता हुआ कहने लगा--

गुरुदेव! मुझे अपनी शरण में रख लीजिए। आपके पारस स्पर्श को पाकर मुझ जैसा लोहा भी सोना बन जायेगा।

आचार्यश्री ने द्रवित होकर उसके सिर पर अपना हाथ रख दिया। धन्य हो गया चण्डसोम और वहीं उनके चरणों के समीप बैठ गया। अब उसके मुख पर भयंकरता के स्थान पर निरीहता थी। वह आत्मशुद्धि के लिए आतुर था।

**मानभट्ट की कथा :**

प्रत्यक्ष दर्शन विश्वासजनक होता है। राजा ने चंडसोम को प्रत्यक्ष देखा तो उसे आगे भी जिज्ञासा हुई। उसने विनय की—

गुरुदेव! मान कषाय का भी विस्तारपूर्वक वर्णन करिये।

आचार्यश्री मान कषाय का स्वरूप बताने लगे–

अभिमान संताप की जड़, सम्पत्ति का नाश करने वाला, प्राप्त ज्ञान का अवरोध करने वाला और दुर्गति को प्राप्त कराने वाला है। अभिमानी अपने-पराये का भेद नहीं कर पाता; वह संसार में अपने शत्रु ही पैदा करता है, मित्र नहीं। मान रूपी हाथी पर चढ़ा हुआ मनुष्य माता-पिता, स्त्री आदि अपने परिवारी-जनों को भी मरते हुए देखता रहता है, उन्हें बचाने का प्रयास नहीं करता।

राजा को कुछ आश्चर्य हुआ, गुरुदेव के अन्तिम शब्दों को सुनकर पूछा—

क्या ऐसे पुरुष भी इस पृथ्वी पर हैं?

पृथ्वी पर ही क्या, तुम्हारी दायी ओर ही बैठा है, ऐसा पुरुष।

राजा पुरन्दरदत्त की दृष्टि अपनी दायीं ओर घूम गई। उसने देखा एक पुरुष बैठा है अभिमान की साक्षात् मूर्ति बना हुआ। उसकी आंखें मिची हुई हैं, बार-बार बाएँ पैर को पृथ्वी पर मार रहा हैं, रंग उसका तपे हुए स्वर्ण की कांति जैसा है और उसकी आँखों के पलक लम्बे तथा भारी हैं। राजा ने उसकी ओर से दृष्टि फेर ली और आचार्यश्री से पूछा—

इस व्यक्ति ने क्या अनर्थ किया?

आचार्य धर्मनन्दन बताने लगे—

मालवदेश की राजधानी उज्जयिनी से ईशान दिशा में एक योजन दूर कूपवृन्द नामका एक ग्राम है। उसमें क्षेत्रभट्ट नामका एक दरिद्र राजपूत रहता था। क्षेत्रभट्ट यों तो वंश-परम्परा से राज्यवंश से सम्बन्धित था किन्तु कर्मोदय से दीन-हीन जीवन बिता रहा था। उसका एक पुत्र था—वीरभट्ट। जब दरिद्रता असह्य हो गई तो ठाकुर क्षेत्रभट्ट अपने पुत्र वीरभट्ट को साथ लेकर उज्जयिनी आए और राजा की सेवा करने लगे। अनेक युद्धों में प्रदर्शित उनकी वीरता और युद्ध कुशलता से प्रसन्न होकर उज्जयिनी नरेश ने कूपवृन्द ग्राम उनको पुरस्कार स्वरूप दे दिया। क्षेत्रभट्ट तो ग्राम-स्वामी बनकर लौट आए किन्तु अपने पुत्र वीरभट्ट को राजा की सेवा में छोड़ दिया। अब वीरभट्ट पिता के स्थान पर राजा की सेवा करने लगा।

वीरभट्ट के पुत्र का नाम था शक्तिभट्ट। शक्तिभट्ट बहुत अभिमानी था। वह अपने सामने किसी को कुछ न समझता था। इस अभिमान के फलस्वरूप साथियों ने उसका नाम रखा दिया—मानभट्ट। वह इसी नाम से प्रसिद्ध हो गया।

एक दिन राज सभा में सभी अपने-अपने आसन पर बैठे थे। इसी समय मानभट्ट आया। महाराज को प्रणाम कर ज्यों ही वह अपने आसन के समीप पहुँचा तो वहाँ भीलराज के पुत्र पुलिंद को बैठ देखा। भौहें तन गई मानभट्ट की। उसने तिरस्कार पूर्ण शब्दों में बोला—

पुलिंद! यह मेरा आसन है, यहाँ से उठ जा।

पुलिंद ने शान्त स्वर में कहा—

मुझे मालूम नहीं था, इस बार क्षमा करो, फिर कभी नहीं बैठूंगा।

पुलिंद के शान्त शब्दों से मानभट्ट के अहंकार पर मरहम लगा। वह भी कुछ शान्त हो गया किन्तु भड़काने वाले सभी जगह होते हैं। एक ओर से आवाज आई—

यह तो मानभट्ट का सरासर अपमान है।

दूसरे ने रंग चढ़ा दिया—

भीलपुत्र ने जानबूझकर अपमान किया है।

अभिमानी मानभट्ट भला अपमान कैसे सह सकता था। तुरन्त बोल उठा—

'जान-बूझकर अपमान करने वाला इसका फल भी भोगेगा' कहकर उसने बिना कुछ सोचे-विचारे कमर से तलवार निकालकर पुलिंद के सीने में भौंक दी। रक्त की धार बह निकली। राजसभा में खून बहने लगा। अब मानभट्ट को होश आया—यह क्या अनर्थ हो गया! वह तुरन्त राजसभा से भागा और अपने घर जा पहुँचा। माता-पिता को सम्पूर्ण हकीकत सुना दी। पिता ने कहा—

पुत्र! अब तो बचने के दो ही तरीके हैं। या तो तुम पुनः राजसभा चले जाओ और स्वयं को महाराज के चरणों में समर्पित कर दो, अन्यथा यह नगर छोड़ जाओ।

मानभट्ट को दूसरा मार्ग ही पसन्द आया। उसने अपना आवश्यक सामान एक नाव में भरकर माता-पिता एवं पत्नी के साथ नर्मदा नदी के जल-मार्ग द्वारा चल दिया।

पुलिंद की सेना भी चुप नहीं बैठी थी। उसने भी नदी तट पर पड़ाव डाल दिया था। मानभट्ट की मुठभेड़ शत्रु सेना से नदी तट पर ही हो गई। उस अकेले ने ही भील सेना के छक्के छुड़ा दिये। उसकी

वीरता की धाक सब पर जम गई। नदी के दूसरे किनारे पर वह किसी निर्जन किले में अपने माता-पिता और पत्नी के साथ रहने लगा।

कुछ दिन बाद वसंत ऋतु का आगमन हुआ। राजा और प्रजा सभी जन वसन्तोत्सव मनाने के लिए उद्यान में गए। युवक-युवतियों की टोलियाँ बन गई और सभी क्रीड़ा का आनन्द लेने लगे। युवकों ने निर्णय किया–झूला झूलते हुए सभी अपनी प्रियतमाओं की स्मृति में गीत गाएँगे।

सभी ने अपनी-अपनी प्रेमिकाओं और प्रियाओं का रूप वर्णन करते हुए गीत गाए। मानभट्ट की पत्नी गौरांगी थी किन्तु उसने श्यामांगी की प्रशंसा का गीत गाया। स्त्री को यह अपना अपमान लगा और कुपित होकर अपने शयन-कक्ष में लौट आई। क्रोधान्ध होकर उसने आत्महत्या का निर्णय कर लिया। छत के कुन्दे से रस्सी लटकाई और फन्दा गले में डालकर बोली—हे लोकपालों! तुम साक्षी हो, मैंने स्वप्न में भी अपने पति के सिवाय किसी दूसरे व्यक्ति का चिन्तन नहीं किया किन्तु आज जब इन्होंने ही मुझे सभी के सामने तिरस्कृत कर दिया तो मेरे जीवन को धिक्कार है। ऐसे अपमानित जीवन से तो मृत्यु लाख दर्जे बेहतर है। यह कहकर उस स्त्री ने पैरों के नीचे का आसन ठोकर मारकर हटा दिया और रस्सी के सहारे झूल गई। फंदा कसा, जीभ बाहर निकल आई, आँखें खुली की खुली रह गई और शरीर में शीतलता की लहर दौड़ गई।

इधर जब मानभट्ट को राज उद्यान में अपनी पत्नी नहीं दिखाई पड़ी तो दौड़ा-दौड़ा घर आया। पत्नी के शयन कक्ष में देखा तो वह रस्से में झूलती नजर आई। तुरन्त कटार से रस्सा काटा गले का फंदा खोला और पंखे से हवा करने लगा। कुछ देर बार पत्नी की चेतना लौटी तो मानभट्ट ने कहा—

तुम्हें यह क्या सूझी? ऐसा अनर्थ करने पर क्यों उतारू हो गई? यदि मर जाती तो.........?

तो क्या? तुम्हें तो तुम्हारी प्रिया श्यामांगी मिल जाती। मुझसे तुम्हें क्या काम है? जाओ उसी के पास।

अब समझ में आया आत्महत्या का कारण, हँसकर मानभट्ट ने कहा–तुम्हें भ्रम है, मेरी कोई श्यामांगी नहीं है। मेरे जीवन में तो अकेली तुम हो।

नहीं, यह झूठ है। तुमने सबसे सामने श्यामांगी का गुणगान किया था। वहीं तुम्हारे हृदय में बसती है।

वह तो परिहास था। तुम बुरा मत मानो। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेरा किसी भी अन्य स्त्री से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जब स्त्री के हृदय में कोई बात जम जाती है तो सरलता से नहीं निकलती। वह अपनी बात पर हठ ठान लेती है। मानभट्ट की स्त्री ने भी हठ पकड़ ली। उस पर मानभट्ट की अनुनय विनय का कोई प्रभाव न पड़ा। निराश होकर वह घर से निकल गया।

पति के चले जाने के बाद पत्नी को जैसे भान हुआ। वह अपने हठ पर पछताने लगी। वह भी पति के पीछे-पीछे जंगल की ओर चलने लगी। सास-ससुर ने पूछा—

इतनी रात गए चुपके-चुपके कहाँ जा रही हो?

आपके पुत्र रूठ गए है, उन्हें मनाने जा रही हूँ।

पुत्र के रूठने की बात सुनकर माता-पिता भी पीछे-पीछे चल दिए। मानभट्ट ने पीछे से सुनाई पड़ने वाली पगचापों से समझ लिया कि तीनों मुझे मनाने चले आ रहे हैं। उसका मानरूपी सर्प फुँकार उठा। समीप ही एक कुँआ था और उसके आगे ही घनी झाड़ियाँ। उसने एक पत्थर उठाकर कुँए में फैक दिया और स्वयं जा छिपा झानियों की ओट में। वह देखना चाहता था कि मुझे कौन कितना प्रेम करता है।

पत्थर गिरने की आवाज सुनकर मानभट्ट की पत्नी ने उसे गिरा हुआ मान सिया। वह भी विमूढ़ होकर कुएं में कूद गई। उसके पीछे-

पीछे उसकी सास ने हा पुत्र! कहकर कुएं में छलांग लगा दी और अन्त मे मानभट्ट का पिता भी उसी कुएं में कूद गया।

मानभट्ट अपनी पत्नी और माता-पिता को कुएं में गिरता देखता रहा किन्तु मानरूपी गज से नहीं उतरा। सुबह तक तीनों प्राणियों के प्राणपखेरू उड़ गए। मानभट्ट का मान कुछ कम हुआ। उसने तीनों की अंत्येष्टि की और स्वयं को उनकी मृत्यु का उत्तरदायी माना। अब अपने कलुष को धोने यत्र-तत्र भटकने लगा। मथुरा भी पहुँचा; किन्तु वहाँ भी इसकी आत्मा को शांति नहीं मिली। अब यह कौशाम्बी आया है।

मुनिश्री के मुख से अपने जीवन का यथार्थ वृत्तान्त सुनकर मानभट्ट उनके चरणों में जा गिरा और अपने उद्धार की प्रार्थना करने लगा।

आचार्य धर्मनंदन ने मानभट्ट की विनय स्वीकार कर ली।

राजा पुरन्दरदत्त भी मान के कुपरिणाम से सिहर गया। मान का ऐसा भयंकर परिणाम उसकी आँखों के सामने नाचने लगा।

**मायादित्य की कथा—**

राजा पुरन्दरदत्त ने मान का कुपरिणाम देख ही लिया था। अब उसकी जिज्ञासा माया कषाय को जानने की हुई। उसने पूछा—

गुरुदेव! अब मुझे माया के कुपरिणाम भी पताइये।

आचार्यश्री ने बताया—

राजन्! माया का अर्थ है कपट। मायाचारी पुरुष का कोई आदर नहीं करता, उसके कुटिल स्वभाव से मित्र भी शत्रु बन जाते हैं, धन-सम्पत्ति नष्ट हो जाती है और वह उन्मत्त, मूर्ख, आलसी के समान हो जाता है। उसका जीवन जगत में निस्सार और अविश्वसनीय हो जाता है। कपट और धोखे की प्रतिमूर्ति एक पुरुष तुम्हारी बायीं ओर पीछे की तरफ बैठा है। इसका शरीर स्थूल और मंदकांति वाला श्यामवर्णी है, जलपूरति नेत्र, संकुचित शरीर वाला देखते ही दृष्टि झुका लेने वाला,

बिल्ली के समान चालाक और भागने में तत्पर, कलुष-हृदय और कुटिल बुद्धि वाला है। इसके कपटाचरण का वृत्तान्त भी सुनो—

काशी जनपद की राजधानी वाराणसी की नैऋत्य दिशा (पश्चिम-दक्षिण) में शालिग्राम नाम का एक सुन्दर ग्राम है। इसमें गंगादित्य नाम का एक वैश्य रहता था। गंगादित्य नाम का ही गंगादित्य था अन्यथा उसके हृदय में कुटिलता कूट-कूटकर भरी हुई थी। वह दुर्जन, दुष्ट और महाकृतघ्नी था। इसीलिए लोगों ने उसका नाम बदलकर मायादित्य रख दिया।

शालिग्राम में ही एक सरल हृदय वणिक रहता था। उसका नाम था स्थाणु। स्थाणु पहले धन-धान्य से सम्पन्न था। मायादित्य ही क्या पूरा ग्राम ही उसे वैसा ही वैभवशाली समझता था। कपटी, कुचाली लोगों की आँखें दूसरों की धन-सम्पत्ति पर लगी रहती हैं। मायादित्य भी तो माया का दास था। उसने बुरी नीयत से स्थाणु से मित्रता की। मित्रता धीरे-धीरे घनिष्ठ होती गई। सरल हृदय स्थाणु कपटी मित्र के हृदय के भावों को नहीं समझता था। वह उसे अपना सच्चा मित्र मानता था। एक दिन स्थाणु ने कहा—

मित्र मायादित्य! संसार में धन ही जीवनयापन का आधार है। अतः धनोपार्जन करना चाहिए।

कहते तो तुम ठीक हो; किन्तु तुम्हारे पास धन की क्या कमी? मायादित्य ने हँसकर उत्तर दिया।

नहीं मित्र! ऐसी बात नहीं है, बाप-दादा का धन तो समाप्त सा हो चला है।

फिर क्या करोगे?

वहीं जो वणिक का कर्तव्य है। देश-विदेश जाकर धनोपार्जन करूँगा।

क्रमशः

# JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

## English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:
   - Vol - 1 (satakas 1- 2) Price : Rs. 150.00
   - Vol - 2 (satakas 3- 6) 150.00
   - Vol - 3 (satakas 7- 8) 150.00
   - Vol - 4 (satakas 9- 11) 150.00
2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism translated by Ganesh Lalwani. Price : Rs. 15.00
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 15.00
5. Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology Price : Rs. 100.00
7. Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains Price : Rs. 100.00
8. Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India Price : Rs. 100.00
9. Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism Price : Rs.
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity Price : Rs. 100.00

## Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira Price : Rs. 60.00

| | | | |
|---|---|---|---|
| 6. | Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat, | Price : Rs. | 45.00 |
| 7. | Ganesh Lalwani -- Panchdasi. | Price : Rs. | 100.00 |
| 8. | Rajkumari Begani-Yado ke Aine me. | Price : Rs. | 30.00 |
| 9. | Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra | Price : Rs. | 15.00 |
| 10. | Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm | Price : Rs. | 24.00 |
| 11. | Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika | Price : Rs. | 20.00 |
| 12. | Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad | Price : Rs. | 250.00 |
| 13. | Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra | Price : Rs. | 50.00 |
| 14. | Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan | Price : Rs. | 50.00 |
| 15. | Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal | Price : Rs. | 50.00 |
| 16. | Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh | Price : Rs. | |

## Bengali :

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | Ganesh Lalwani-Atimukta, | Price : Rs. | 40.00 |
| 2. | Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita | Price : Rs. | 20.00 |
| 3. | Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma. | Price : Rs. | 15.00 |
| 4. | Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma | Price : Rs. | [illegible]0.00 |
| 5. | Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra | Price : Rs. | 25.00 |
| 6. | Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita | Price : Rs. | 20.00 |
| 7. | Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti | Price : Rs. | 20.00 |

## Some Other Publications :

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir | Price : Rs. | 15.00 |
| 2. | Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan | Price : Rs. | 10.00 |
| 3. | Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma | Price : Rs. | 100.00 |
| 4. | Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali) | Price : Rs. | |
| 5. | Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali) | Price : Rs. | 50.00 |
| 6. | K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira | Price : Rs. | 25.00 |

ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी।

# KUSUM CHANACHUR

## Founder : Late. Sikhar Chand Churoria

## Our Quality Product of :

- Anusandhan
- Kolkata Nasta
- Badsha Khan
- Picnic
- Raja
- Shubham
- Bhaonagari Ghantia
- Jocker
- Lajawab
- Papri Ghantia
- Rim Jhim
- Tinku

**MANUFACTURED BY**

M/s. K. K. Food Product
Prop. Anil Kumar, Sunil Kumar Churoria
P. O. Azimganj, Dist: Murshidabad
Pin No.- 742122, West Bengal
Phone No.: 03483-253232,
Fax No.: 03483-253566

**KOLKATA ADDRESS:**

36, Maharshi Debendra Road, 3rd Floor Room No.- 308
Kolkata - 700 006, Phone No.: 2259-6990, 3293-2081
Fax No.: 033-2259-6989, (M) 9434060429, 9830423668

TITTHAYARA
Vol XXXV No.09
25th December 2011

Registered
No. KOL.RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects . Interiors . Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700013
Phone No.-2227 5240/45, Fax :22276356
Email Id:info@nahardecor.com